शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

: संपादक : **रामजी माणेकचंद दोशी** वकील

सितम्बर : १९५८ ☆ वर्ष चौदहवाँ, भाद्रपद वीर नि. सं. २४८४ ☆ अंक : ५

अब मोक्ष में जाने का अवसर आया है

अहो ! ऐसा पवित्र जैनधर्म ! ऐसा अपूर्व मोक्षमार्ग ! पूर्वकाल में कभी जिसकी आराधना नहीं की—ऐसा मोक्षमार्ग !—उसकी साधना करके अब मोक्ष में जाने का अवसर आया है... तो उसमें प्रमाद या अनुत्साह कैसे होगा ?—इसप्रकार अनेक रीति से मोक्षमार्ग की महिमा प्रसिद्ध करके सम्यक्त्वी अपने तथा दूसरे के आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थिर करता है।

धर्मात्मा अपने आत्मा को मोक्षमार्ग से च्युत नहीं होने देते, उसी प्रकार अन्य साधर्मी को भी कदाचित् मोक्षमार्ग के प्रति निरुत्साही होकर डिगता देखे, तो उसे उपरोक्तानुसार उपदेशादि द्वारा मोक्षमार्ग के प्रति उल्लासित करके दृढ़तापूर्वक मार्ग में स्थिर करते हैं।—ऐसा स्थितिकरण का भाव धर्मी को सहज ही आ जाता है।

तुं स्थाप निज के मोक्षपंथे, ध्या अनुभव तेहने;
तेमां ज नित्य विहार कर, नहिं विहर परद्रव्यो विषे।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१६१]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

यह है मुक्तिपुरी का प्रवासी

जिसने निज शुद्धात्मद्रव्य का स्वीकार करके परिणति को उस ओर उन्मुख किया है—ऐसे धर्मात्मा का परिणमन अब प्रतिक्षण मुक्ति की ओर ही हो रहा है; वह 'मुक्तिपुरी का प्रवासी' हुआ है; इसलिये 'अब मुझे अनंत संसार होगा ?'—ऐसी शंका उसे उठती ही नहीं; स्वभाव के बल से उसे ऐसी नि:शंकता है कि अब अल्पकाल में ही मेरी मुक्तदशा विकसित हो जायेगी।

आत्मा का आनन्दमय चैतन्यस्वभाव है,
उस स्वभाव में भव नहीं है, उस स्वभाव में शंका नहीं है;
उस स्वभाव में भय नहीं है, उस स्वभाव में विकार नहीं है;

—इसलिये—

जहाँ ऐसे स्वभाव का निर्णय करके उस ओर परिणमन हुआ, वहाँ आनन्द का वेदन होता है।

वहाँ भव नहीं रहते, वहाँ शंका नहीं रहती;
वहाँ भय नहीं रहता, वहाँ विकार नहीं रहता;

—इसलिये—

धर्मी भव का नाशक है, धर्मी नि:शंक है,
धर्मी निर्भय है, धर्मी विकार का नाशक है।

ऐसे धर्मात्मा अल्पकाल में सम्पूर्ण विकार का नाश करके तथा सम्पूर्ण शुद्धता प्रगट करके सिद्ध परमात्मा होकर मुक्तिपुरी में पहुँच जाता है।

धन्य है..... उस मुक्तिपुरी के प्रवासी को!

आत्मधर्म

सम्पादक : रामजी माणेक चन्द दोशी, वकील

सितम्बर : १९५८ ☆ वर्ष चौदहवाँ, भाद्रपद वीर नि. सं. २४८४ ☆ अंक : ५

श्री पद्मनंदी आचार्य कृत श्री पद्मनंदी पंचविशतिका के देशव्रतोद्यन नामक अधिकार पर सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी का प्रवचन

देशव्रतोद्योतनम्

[प्र० भाद्रपद सुदी ४, रविवार, ता० २१-८-५५]

(गतांक १६० से आगे)

मेरे स्वभाव में आनन्द है; ऐसी श्रद्धा करके आनन्द मार्ग पर चलनेवाला श्रावक है।

श्रावक किसे कहें ? आत्मा का स्वरूप शुद्ध चैतन्य, वीतरागी है, निर्दोष शांति इस स्वरूप में ही प्राप्त हो सकती है, अन्यत्र नहीं। जो अंतरंग की शांति का आश्रय लेकर राग कम करे, वही श्रावक है। देह, मन, वाणी से आत्मा भिन्न है। शरीर में, स्त्री में, मकान में सुख है क्या ? नहीं, उनमें शांति नहीं है। क्या पर में शांति है ? नहीं। जो आत्मीय शांति का इच्छुक है, उसे निर्णय करना चाहिये कि शांति कहाँ मिलेगी ? पर में आत्मीय सुख नहीं है; सुख तो आत्मस्वभाव में है, आत्मा त्रिकाल-ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसकी श्रद्धा करनी चाहिये। ऐसे आत्मा की वीतरागता पूर्ण पवित्र श्रद्धा कर राग घटाने से आंशिक अविकारी दशा होती है, उस भूमिका में, आंशिक शुभराग होता है। यह अवस्था श्रावक के होती है। 'पर में सुख है' की भ्रांति का नाश करके आत्मा के आनन्द, वीतरागस्वरूप के निर्णय करने का इच्छुक श्रावक कहलाता है। उस स्वरूप का विश्वास करके पुण्य-पाप तथा संयोगों का भरोसा छोड़ना चाहिये, उनमें सुख नहीं है, वह तो मेरे स्वभाव में है—ऐसे विश्वाससहित वह राग कम करता है। ऐसे मार्ग के बतानेवाले देव, गुरु, शास्त्र के प्रति अनुराग, भक्ति प्रकट करता है, वह श्रावक कहलाता है। यदि धन में सुख हो तो धन से गड़ जाने पर

ज्यादा सुख होना चाहिये, किंतु संयोग में सुख नहीं है। अज्ञानी जीव, संयोग से ममत्त्व करता है किंतु शरीर, लक्ष्मी, घर आदि सबकुछ, अंत समय में, यहीं रह जाएंगे; 'वे मेरे, मैं उनका' यह ममता बुद्धि ही साथ रहेगी। किन्तु इसमें सुख शांति नहीं है। मेरा स्वभाव वीतराग निर्दोष है, इसके आश्रय से ही शाश्वत शांति प्रकट होती है। श्रावक, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अनुराग रखता है, इसे ही गृहस्थाश्रम का धर्म कहा है। जो स्त्री, पुत्र, परिवार में सुख मानता है; अपने में सुख न मानकर पर में सुख माननेवाला मूर्ख है। मेरा स्वभाव शुद्ध आनन्दमय है, इसके आश्रय से ही सुख है, ऐसी मान्यतावाला श्रावक कहलाता है। कुल में, सम्प्रदाय में जन्म लेने मात्र से श्रावक नहीं हो जाता।

आनन्द मार्ग के पथिक श्रावक को पूर्ण आनन्दस्वरूपी भगवान की प्रतिमा और मन्दिर बनाने का भाव होता है।

अरागी आत्मा आनन्दकन्द है, वही मेरा स्वभाव है। ऐसे स्वभाव के प्रति विनयी जीव पूर्ण आनन्द को प्राप्त सर्वज्ञदेव के प्रति प्रेम करता है, स्त्री-पुत्र से प्रेम करनेवाला जीव उनकी फोटो देखकर संतुष्ट होता है; उसी प्रकार वर्तमान में वीतरागी सर्वज्ञदेव की अविद्यमानता है, और अपने वीतरागी आत्मा की श्रद्धा है किन्तु अपनी पूर्ण दशा प्राप्त नहीं हुई है; इसलिये श्रावक, सर्वज्ञदेव के जिनमन्दिर के लिये दान अवश्य करता है। पूर्णानन्द प्राप्त देव की वीतरागी मुद्रा को देखकर जिसे उनका ओर अपने स्वरूप का स्मरण होता है, वह इस पंचमकाल में वीतराग भगवान की प्रतिमा और मन्दिर बनाने की इच्छा किए बिना नहीं रहता। जैसे अपने निवास के लिए अच्छा मकान बनाता है वैसे ही, वीतराग देव त्रिकाल-वेत्ता सर्वज्ञ परमात्मा हैं, जिनकी वाणी सर्वज्ञता प्रकट करने में निमित्त है, उनकी प्रतिमा और जिनमन्दिर बनाने का भाव श्रावक के आये बिना नहीं रहता।

गाथा-२३

यात्राभिः स्नपनैर्महोत्सवशतैः पूजाभिरुल्लोचकैः।
नेवेद्यैर्बलिभिर्ध्वजैश्च कलशैस्तौर्यत्रिकैर्जागरैः॥
घण्टा चामरदर्पणादिभिरपि प्रस्तार्य शोभां परां।
भव्यः पुण्यमुपार्जयन्ति सततं सत्यत्र चैत्यालये॥२३॥

श्रावक जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा तथा मन्दिरों आदि की प्रभावना में अनेक भक्ति भाव करता है।

इस संसार में चैत्यालय होने से, धर्मी जीव को अपनी शांति का ज्ञान हुआ है, इसलिये वह

पूर्ण शांति को प्राप्त सर्वज्ञदेव के वियोग में उनकी प्रतिमा का पूजन आदि करता है। जिन्हें पूर्ण आनन्द प्राप्त हो गया है, भोजनादि की व्याधि नहीं रही है—ऐसे भगवान की प्रतिमा और चैत्यालय बनाकर श्रावक बारम्बार भक्ति करता है। चैत्यालय हों तो लोग भगवान के प्रतिबिम्ब के दर्शन कर पाप दूर करते हैं और पुण्यार्जन करते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि भगवान कुछ करते या देते नहीं है। 'हे प्रभु! मेरा भव-भ्रमण समाप्त कर दो।'—भक्त कहता है, किन्तु क्या भगवान ने अब तक रुलाया? नहीं; तूने अपने आप ही भव भ्रमण किया है और अब तू ही इस भ्रमण को समाप्त कर सकता है। भगवान की प्रतिमा तो निमित्त है। पूर्णानंद और मुक्ति प्राप्त सर्वज्ञ के विरह में उनकी प्रतिमा बनाई जाती है, मूर्ति को भगवान के रूप में धर्मात्मा श्रावक स्वीकार करते हैं और भक्ति करते हैं। उनका शुद्ध जल से अभिषेक किया जाता है। अपने बच्चे को नहाते समय माँ प्रसन्न हो जाती है; उसी प्रकार भगवान की प्रतिमा पर जल के अभिषेक को देखकर श्रावक प्रमुदित हो जाता हैं। मूर्ति की उत्थापना करना वास्तविक मार्ग से दूर है। पुत्र, पुत्री, स्त्री आदि का जन्म दिवस मनाना पापवृत्ति है। आत्मा का प्रेमी, भगवान सर्वज्ञदेव के विरह में उनका बारम्बार उत्सव करता है, पूजा करता है। स्वयं भरत चक्रवर्ती भगवान की पूजा करता था। धर्मी के अन्तरंग में अपने पूर्ण स्वरूप की पूर्ण प्रतीति है किन्तु जबतक स्वयं को पूर्णता प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक वह पूजा आदि करता है, वह पाप से बचता है और उसे पुण्य का भाव होता है। जिस ग्राम में मन्दिर नहीं हो तो इच्छा रखते हुए भी, धर्मी कहाँ दर्शन करे? अत: प्रत्येक धर्मी का कर्तव्य है कि वह अपने निवासस्थान में मन्दिर बनाये। पद्मनंदि आचार्य दिगम्बर वीतरागी मुनि थे। मुनि के पास दया का उपकरण मयूर पंख की पीछी और शारीरिक अपवित्रता दूर करने के लिए कमंडल में जल होता है, यही साधु के लिए सनातन पद्धति है। ऐसे वीतरागी मुनि ने ताड़पत्रों पर छिद्र करके यह ग्रन्थ लिखा है। भगवान के सम्मुख नैवेद्य चढ़ाते समय उनके (भगवान के) अनाहारपणे की भावना श्रावक को जागृत होती है और वह भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, नवीन मन्दिर पर ध्वज दण्ड चढ़ाता है, उत्सव करता है। देव-गुरु-शास्त्र के प्रति श्रावक को बार-बार प्रमोद होता है। अपने पुत्र-पुत्री के विवाहादि में जैसे गृहस्थ को प्रसन्नता व उत्साह होता है, उसी प्रकार धर्मी को वीतराग प्रतिमा की शोभा के लिए भाव आये बिना नहीं रहते।

धर्मी जीव, मन्दिर के शिखर पर कलश चढ़ाते हैं, बाजा बजवाते हैं, मन्दिर में घंटा, चंवर, दर्पण आदि लगाते हैं; इसप्रकार इन सब सुन्दर वस्तुओं से मन्दिर की उत्कृष्ट शोभा करते हैं और

महान पुण्य का संचय करते हैं। इसलिये जहाँ चैत्यालय का अभाव हो, वहाँ भव्य जीवों को चैत्यालय अवश्य बनाना चाहिये। इसप्रकार दान का प्रकरण पूरा हुआ।

गाथा-२४

ते चाणुव्रतधारिणोऽपि नियतंयान्त्येव देवालयं।
तिष्ठन्त्येव महर्द्धिकामरपदं तत्रैव लब्ध्वा चिरम्॥
अत्रागत्य पुनः कुलेऽति महति प्राप्य प्रकृष्टं शुभान्।
मानुष्यं च विरागतां च सकलत्यागं च मुक्तास्ततः॥२४॥

श्रावक अणुव्रत का पालन कर देवगति पायेगा, वहाँ से चयकर मनुष्य होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

धर्मी जीव गृहस्थदशा में जिनेन्द्रदेव की पूजा, गुरु की वंदना संयम, तप, ध्यान और स्वाध्याय—ये ६ आवश्यक अवश्य करता है, पाँच अणुव्रत ग्रहण करता है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का आंशिक पालन करता है। ऐसा श्रावक स्वर्ग में जायेगा। आत्मा के आनन्दकन्दस्वरूप की श्रद्धा रखनेवाले छः आवश्यक और पाँच अणुव्रत का पालन करने से स्वर्ग में जाते हैं।

सीमंधर भगवान वर्तमान में विदेहक्षेत्र में हैं, वहाँ भरतक्षेत्र के धर्मात्मा मरकर नहीं जाते। जो मनुष्य शुद्ध चिदानन्द की प्रतीति करता है और बारह व्रत पालता है, वह मरकर मनुष्य न बनकर देवगति में जाता है। मिथ्यादृष्टि मनुष्य मरकर मनुष्य हो सकता है। जिन जीवों को शुद्ध चैतन्य शक्ति का भान है, उन्हें शुभराग के परिणामस्वरूप स्वर्ग के इन्द्रादि के पद मिलते हैं। जिस खेत में सौ मन अनाज हो, वहाँ घास भी तद्नुरूप होती ही है; उसी प्रकार धर्मात्मा को आनन्दकन्द चैतन्य की दृष्टि है, वह जबतक पूर्णता को न पहुंच जाये, तब तक उसे शुभराग के फलस्वरूप देव पद की प्राप्ति होती है। आजकल यह कहा जाता है कि 'यह भव मीठा तो परभव किसने दीठा' यह ठीक मान्यता नहीं है। धर्मात्मा शुभराग के फलस्वरूप प्राप्त देवगति में बहुत काल तक रहता है; आयु समाप्त होने पर पुनः मनुष्य गति मिलती है। उसे मनुष्य भव में वैराग्य होता है 'अहो! मेरा कार्य अपूर्ण रह गया, इसलिये मैं देवगति में गया था।' इसप्रकार वह तीव्र वैराग्य की भावना करके समस्त परिग्रह छोड़कर निर्ग्रंथ वीतरागी मुनि बनता है और तपश्चरण करता हुआ अंत में मुक्ति प्राप्त करता है। चैतन्य शक्ति के भानवाला जीव, पूर्णदशा प्राप्त नहीं होने के कारण, शुभराग के परिणाम

–स्वरूप स्वर्ग में जाता है और वहाँ से चयकर मनुष्य होकर मुक्ति जाये, इसप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव तीन भव में मुक्त हो सकता है।

आत्मा की पूर्ण शक्ति प्रकट कर पूर्ण आनन्द का अनुभव करना मुक्ति है, इसे धर्मात्मा गृहस्थ तीसरे भव में पा सकता है, इसी कारण अणुव्रतादि बारह व्रत मुक्ति के कारण हैं; इसलिये भव्य जीवों को छः आवश्यकपूर्वक अणुव्रतादि का पालन करना चाहिये। यह जीव खान, पान और अर्जन के कार्य दिन-रात करता रहता है, धर्मात्मा इनसे बचने के लिए दया, दान, पूजा आदि किये बिना नहीं रहता। शुद्ध दृष्टिवाले धर्मात्मा इसी क्रम से मुक्ति प्राप्त करेंगे।

गाथा-२५

पुन्सोऽर्थेषु चतुर्षु निश्चलतरो मोक्षः परं सत्सुखः।
शेषास्तद्विपरीतधर्मकलिता हेया मुमुक्षोरतः॥
तस्मात्तत्पदसाधनत्वधरणो धर्मोऽपि नो सम्मतो।
यो भोगादिनिमित्तमेव स पुनः पापं बुधैर्मन्यते॥२५॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में मोक्ष उत्तम पुरुषार्थ है।

पुरुषार्थ चार प्रकार के हैं:—

१. धर्म पुरुषार्थ—राग की मंदता का—दया, दान, सेवा, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का—पुरुषार्थ, यह पुण्य पुरुषार्थ है।

२. अर्थ पुरुषार्थ—कमाने का पुरुषार्थ है, यह पाप पुरुषार्थ है।

३. काम पुरुषार्थ—भोग का पुरुषार्थ है, यह पाप है।

४. मोक्ष—पुण्य-पाप रहित मेरा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, ऐसी श्रद्धा कर पूर्ण दशा प्रकट करने का प्रयत्न करना मोक्ष पुरुषार्थ है।

इन चारों में मोक्ष पुरुषार्थ उत्तम है। इसके अतिरिक्त अन्य पुरुषार्थ विपरीत मार्ग की ओर ले जानेवाले हैं। आत्मा शुद्ध चिदानंद है, ऐसी श्रद्धावाले धर्मात्मा जीव को विषयभोग या कमाने की इच्छा या उद्योग नहीं करने चाहिये। इस ग्रन्थ की अन्तिम गाथा में आचार्य कहते हैं कि "जो मनुष्य मुमुक्षु हैं और मोक्ष की प्राप्ति के अभिलाषी हैं, उनके लिये युवती-स्त्रियों के साहचर्य के निषेधार्थ यह ब्रह्मचर्याष्टक बनाया है किंतु जो मनुष्य भोग-विलास में आसक्त हैं, अगर उन्हें यह अष्टक अच्छा नहीं लगे तो मुझे मुनि समझकर क्षमा करें।" अतः भोगविलास में रुचि छोड़ना ही

कल्याणकारी है क्योंकि इस मनुष्य भव में भी निम्न दर्जे के भाव करोगे तो आगे नीच गति पाओगे। अर्थ और काम पुरुषार्थ पाप है। धर्म-दया दानादि का भाव-पुण्यकारी पुरुषार्थ है। स्वभाव की दृष्टिपूर्वक सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति पुण्य की निमित्त है किंतु अगर कोई इस मान्यता से भक्ति करे कि इससे मुझे सामग्री मिलेगी, राजा होऊंगा, धनी होऊंगा तो यह पुण्य निमित्त न रहकर पाप का निमित्त हो जायेगा। इसलिये इस मान्यता के साथ ये कार्य नहीं करने चाहिये। आत्मा की दृष्टिपूर्वक होनेवाले शुभभाव, मोक्ष के निमित्त हैं, उनका अभाव होने पर मुक्ति होगी। पूर्णानन्द आत्मा का विश्वास होने पर भी अपनी निर्बलता से स्थिर नहीं रह सकता, इसलिये धर्मी को देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुभराग आता है जो कि मोक्ष में निमित्त है।

भावार्थ—धर्म पुरुषार्थ पुण्यकारी है और अर्थ तथा काम पुरुषार्थ पापरूप है। इसलिये मोक्ष पुरुषार्थ पुण्य-पापरहित अंतरंग की स्वभाव दृष्टि-करना सच्चा धर्म है। ऐसी श्रद्धा होने पर देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि को व्यवहार धर्म कहा है। जिस पुरुषार्थ से विकारी दशा नष्ट कर अविकारी दशा-मोक्ष दशा प्रकट हो, ऐसा मोक्ष पुरुषार्थ उत्तम है। धन तो अपने कारण से आता और जाता है, बड़े-बड़े राजा-महाराजा, नवाब-बादशाहों के राज्य समाप्त हो गये; इसलिये पुण्य और पाप दोनों को छोड़कर अपनी पूर्णदशा प्रगट हो, ऐसा मोक्ष पुरुषार्थ ही धर्मी जीवों को करना चाहिये और कमाने तथा भोग-विलास का पुरुषार्थ छोड़ना चाहिये।

फल की इच्छा से पुण्य पुरुषार्थ नहीं करना चाहिये।

श्रावक के पाँच अणुव्रत-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदारसंतोष व्रत, अपरिग्रह होते हैं। भव्य जीवों को तो मोक्ष प्राप्ति का उद्योग ही करना चाहिये। आत्मा के आनन्द, वीतरागी स्वभाव के बल से पूर्णदशा प्रगट करना ही मुक्ति है। सिद्ध शिला पर रहना मुक्ति नहीं है; वहाँ तो निगोद काय के जीव भी रहते हैं। आत्मस्वरूप की रुचि छोड़ पर में अटकना और तत्परिणाम स्वरूप विकार होना ही संसार है। आत्मस्वभाव विकाररहित है, ऐसी श्रद्धाकर और उसमें लीन होकर पूर्णस्वरूप प्रकट करना मोक्ष पुरुषार्थ है।

गाथा-२६

भव्यानामणुमिर्व्रतैरनणुभिः साव्योऽत्र मोक्षः परं।
नान्यत्किंचिदिहैव निश्चयनयाज्जीवः सुखी जायते॥
सर्वं तु व्रतजातमीदृशधियाः साफल्यमेत्यन्यथा।
संसाराश्रयकारणं भवति यत्तद् दुःखमेव स्फुटम्॥२६॥

भव्य जीवों को मोक्ष के निमित्त अणुव्रत और महाव्रत ग्रहण करने चाहिये।

मनुष्य भव मिला है, इसलिये योग्य जीवों को अणुव्रत अवश्य पालने चाहिये। मुनि महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करते हैं, जिसके पुण्य से उन्हें स्वर्ग मिलता है किन्तु उन्हें स्वर्ग की कामना नहीं है। शुभराग, मोक्ष के निमित्त हैं। किन्तु पुण्य साध्य नहीं है। अज्ञानी पुण्य की इच्छा करता है।

ज्ञानी के जबतक पूर्ण स्वरूप की प्राप्ति न हो जाये, तब तक शुभराग आते हैं किंतु उनमें तथा उनके फल में सुख नहीं है। आनन्दकन्द आत्मा के अवलम्बन से जो पूर्ण दशा हो, वह मोक्ष है। श्रावक के १२ व्रत तथा मुनि के २८ मूलगुण उनकी मुक्ति के निमित्त हैं; यदि इनसे अन्त में मुक्ति हो जाये तो ये निमित्त कहलाते हैं किंतु जिसकी दृष्टि शुभराग के प्रति है, उसके लिये ये व्रतादि संसार के कारण हैं; उसके लिए पुण्य दु:खरूप हैं क्योंकि उसका पुण्य आत्मसुख का निमित्त नहीं है। मुनियों को भी मोक्षदशा के निमित्त पाँच महाव्रतादि अपनाने का भाव आता है। उसी प्रकार श्रावक को अणुव्रतों के धारण का राग होता है। आत्मदृष्टि से शुभराग अनर्थकारक हैं किंतु चरणानुयोग की पद्धति में कहा जाता है कि व्रत धारण करो। द्रव्यानुयोग में कहा जाता है कि धर्मात्मा की दृष्टि राग करने की नहीं होती। निश्चय के ग्रन्थों में कहा गया है कि व्रत अनर्थ के कारण हैं किन्तु साधक को अपनी भूमिका अनुसार शुभराग व्रतादिक अपनाने का राग होता ही है। मुक्तस्वभाव का आश्रय करने से शांति मिलती है किंतु अपूर्ण अवस्था में श्रावक को अणुव्रत का राग आए बिना नहीं रहता; इसलिये उसे अणुव्रत धारण करना चाहिये—ऐसा चरणानुयोग में कहा गया है।

'देशव्रतोद्योतन' नामक अधिकार की समाप्ति करते हुये आचार्य इस अधिकार का फल बताते हैं:—

गाथा-२७

यत् कल्याणपरम्परार्पणपरं भव्यात्मनां संसृतौ।
पर्यन्ते यदनन्त सौख्य सदनं मोक्षं ददाति भुवम्॥
तज्जीयादति दुर्लभं सुनरता मुख्यैर्गुणैः प्रापितम्।
श्रीमत्पंकजनन्दिभिर्विरचितं देशव्रतोद्योतनम्॥२७॥

आत्मभानपूर्वक देशव्रत स्वर्ग तथा परम्परा से मोक्ष का कारण है।

इस गाथा के साथ यह अधिकार पूरा होता है। इस अधिकार में छ: आवश्यकसहित देशव्रत

का वर्णन किया। धर्मात्मा को आत्मा के भानपूर्वक इन्द्रपद मिलता है, फिर मनुष्य होकर मुक्ति प्राप्त करता है। देव भी चक्रवर्ती की सेवा करते हैं। पुण्य के प्रताप से धर्मी जीव चक्रवर्ती, बलदेव आदि बनते हैं। इस अधिकार का भाव अनंत काल तक रहे। वह मोक्षदशा का कारण है, इसलिये मनुष्य भव में देशव्रतादि का भाव करे तो उसकी सफलता है। पद्मनंदि आचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना की है। वे दिगम्बर मुनि थे, जंगल में रहते थे। ऐसे मुनि द्वारा प्रणीत यह शास्त्र और उसमें वर्णितम श्रावक धर्म चिरकाल रहे।

भावार्थ—यह देशव्रतोद्योतन इन्द्र, अहमिन्द्र चक्रवर्ती आदि महान पदों की प्राप्ति का कारण है तथा इससे उत्तम मनुष्य, कुल आदि की प्राप्ति होती है। आत्मानन्द के भानपूर्वक पूर्ण आनन्द प्रकट हुआ है, ऐसे परमात्मा के प्रति भक्ति और अणुव्रत का भाव श्रावक को आए बिना नहीं रहता।

इसप्रकार पद्मनंदि पंचविंशतिका का 'देशव्रतोद्योतन' नामक अधिकार समाप्त हुआ।

अनेकान्तमूर्ति भगवान आत्मा की

कुछ शक्तियाँ

[३३-३४]

भावशक्ति तथा अभावशक्ति

[गतांक नं० १६० से आगे]

[चक्रवर्ती के भी चक्रवर्ती ऐसे इस चैतन्य भगवान के भंडार में सम्यग्दर्शन, मुनिदशा, केवलज्ञान-सिद्धदशा आदि निर्मल रत्नों की माला गुँथी पड़ी है। भंडार खोलकर उसे बाहर निकालने की रीति यहाँ आचार्य भगवान ने बतलाई है। अरे जीव! अन्तर्मुख होकर एकबार अपने चैतन्य भंडार को खोल! तेरी चैतन्यशक्ति ऐसी है कि उसे खोलने पर उसमें से निर्मल पर्यायें निकलेंगी—विकार नहीं निकलेगा।]

ज्ञानस्वरूप आत्मा में अनन्त शक्तिवाला है, उसका यह वर्णन चल रहा है। उसमें जीवत्वशक्ति से प्रारम्भ करके अनेकत्वशक्ति तक की ३२ शक्तियों का वर्णन हो चुका है। अब 'भाव' और 'अभाव' आदि संयुक्तरूप से छह शक्तियों का वर्णन करते हैं।

(३३-३४) भावशक्ति और अभावशक्ति (३५-३६) भाव-अभावशक्ति और अभाव-भावशक्ति; (३७-३८) भाव-भावशक्ति और अभाव-अभावशक्ति।

उनमें से प्रथम भावशक्ति तथा अभावशक्ति का वर्णन चलता है। "ज्ञानस्वरूप आत्मा में विद्यमान अवस्थामयपनेरूप भावशक्ति है; तथा शून्य-अविद्यमान अवस्थामयपनेरूप अभावशक्ति है।" आत्मा त्रिकालस्थायी वस्तु है और उसमें कोई न कोई अवस्था वर्तमान वर्तती ही है। अपनी ऐसी ही शक्ति है कि प्रति समय कोई अवस्था विद्यमान होती ही है। इसलिये दूसरे के कारण अवस्था होती है—यह बात नहीं रहती; और वर्तमान में जो अवस्था विद्यमानरूप से वर्तती हो,

उसके अतिरिक्त अन्य सर्व अवस्थाएँ अविद्यमानरूप हैं—ऐसी अभावशक्ति है। यदि वर्तमान अवस्था विद्यमान न हो तो वस्तु ही न हो, और यदि पूर्व-पश्चात की अवस्थाओं का वर्तमान में अभाव न हो तो पूर्व का अज्ञान कभी (ज्ञानदशा में भी) दूर नहीं होगा; तथा साधकपने में ही भविष्य की केवलज्ञानदशा हो जायेगी; किन्तु ऐसा नहीं है। वर्तमानरूप से एक अवस्था वर्तती है, वह भावशक्ति का कार्य है, और उस अवस्था में दूसरी अवस्थाएँ अविद्यमान हैं,—वह अभावशक्ति का कार्य है। देखो, इसमें पर्यायबुद्धि उड़ जाती है, क्योंकि प्रत्येक पर्याय में सम्पूर्ण द्रव्य साथ ही साथ वर्तता है, किन्तु एक पर्याय में दूसरी पर्याय नहीं वर्तती। और ऐसी दृष्टि से जहाँ आत्मा निर्मल भावरूप परिणमित हुआ, वहाँ उस निर्मल भाव में विकार का अभाव है। पर्याय में विकार का विद्यमानपना ही भासित हो, विकार का अभाव भासित न हो तो उसने सचमुच आत्मा की भाव-अभावशक्ति को नहीं जाना है।

आत्मा है, किन्तु उसकी कोई पर्याय नहीं है—ऐसा माने, अथवा पर के कारण पर्याय का होना माने या पर्याय में आत्मा दिखलाई नहीं देता—ऐसा माने तो उस जीव ने सचमुच भावशक्तिवाले आत्मा को नहीं जाना है। हे भाई! पूर्व की पर्यायों का वर्तमान में अभाव है; भविष्य की पर्यायें भी वर्तमान में अविद्यमान हैं—ऐसी तेरी अभावशक्ति है; इसलिये पूर्व की पर्यायों को न देख, भविष्य की पर्यायों को न देख, वर्तमान पर्याय को वर्तमान वर्तते हुए द्रव्य के साथ युक्त कर; तो उस पर्याय में निर्मलता का भाव और मलिनता का अभाव है। यहाँ भावशक्ति के परिणमन में निर्मलदशा का विद्यमानपना लेना है; क्योंकि जिसने ऐसी शक्तिवाले आत्मा को लक्ष में लिया, उसे वर्तमान पर्याय निर्मलरूप से वर्तती है।

अहो! त्रिकाल जब देखो तब द्रव्य की अवस्था स्वयं से ही विद्यमानरूप वर्तती है, और उस-उस समय की अवस्था के अतिरिक्त अन्य आगे-पीछे की समस्त अवस्थाएँ अविद्यमान ही हैं। वर्तमान पर्याय का वर्तनपना, सो 'भाव' और दूसरी पर्याय का अवर्तनपना, सो 'अभाव'—ऐसी दोनों शक्तियाँ आत्मा में एक साथ वर्तती हैं।

द्रव्य, वह सामान्य है और पर्याय, वह उसका विशेष है। विशेषरहित अकेला सामान्य नहीं हो सकता। यदि आत्मा की अवस्था अपने से न हो तो, सामान्य द्रव्य, विशेषरहित हो जायेगा; इसलिये आत्मा का अभाव ही हो जायेगा। जड़ में भी ऐसा स्वभाव है, इसलिये जड़ की अवस्था का विद्यमानपना भी उसके अपने से ही है।

भावशक्तिवाला भगवान आत्मा जब देखो तब वर्तमान विद्यमान अवस्थावाला ही वर्त रहा है।—कैसी अवस्था?—कहते हैं निर्मल अवस्था। अकेली मलिन अवस्था वर्ते, उसे सचमुच आत्मा की अवस्था नहीं कहते, क्योंकि उस अवस्था में आत्मा का स्वीकार नहीं है।

द्रव्य-गुण त्रिकाल सत् हैं और उनकी प्रवर्तमान अवस्था, वह वर्तमान सत् है। इसप्रकार द्रव्य-गुण और उनकी प्रवर्तमान अवस्था से आत्मा भावरूप है; तथा दूसरी अवस्थाएँ अविद्यमान हैं, इसलिये वह अभावरूप है। भूतकाल की अज्ञानदशा अथवा भविष्य की सिद्धदशा—उनका वर्तमान साधकदशा में अभाव है। अज्ञानदशा भूतकाल में थी, सिद्धदशा भविष्य में होनेवाली है, तथापि वर्तमान में उन दोनों का अभाव है,—ऐसी अभावशक्ति आत्मा में है।

आत्मा की अवस्था में पर का तो अभाव है, और उसकी वर्तमान अवस्था में दूसरी अवस्था का भी अभाव है। अज्ञानी तो पुकार करता है कि अरे! आत्मा में कर्म का बहुत जोर है! उससे कहते हैं कि अरे मूढ़! तेरी पर्याय में कर्म का तो अभाव है, तो वह तेरा क्या करेगा? अपने में अपनी पर्याय के भाव को और कर्म के अभाव को देख! कर्म का तेरी पर्याय में भाव है या अभाव? तेरी पर्याय में तो उसका अभाव है। इसके अतिरिक्त यहाँ तो कहते हैं कि पूर्व की पर्याय का भी वर्तमान में अभाव है; इसलिये "अरे रे! पूर्वकाल में बहुत अपराध किये! अब आत्मा का विचार कैसे होगा?"—ऐसी हताश बुद्धि छोड़ और अपनी वर्तमान पर्याय को स्वभावोन्मुख कर तो उसमें कहीं पूर्व के दोष नहीं आते। अज्ञानी को भी अपनी वर्तमान विपरीतता से ही मलिनता है, कहीं पूर्व की मलिनता उसे वर्तमान में नहीं आती; पूर्व की पर्याय का तो अभाव हो गया है। अहो! प्रति समय वर्तती हुई वर्तमान पर्याय का 'भाव' और उसमें दूसरी पर्यायों का 'अभाव'—उसमें तो प्रत्येक पर्याय की स्वतंत्रता बतलाई है।

वस्तु हो और उसका अपना कोई आकार-प्रकार विद्यमान न हो—ऐसा नहीं हो सकता (यहाँ आकार, वह व्यंजनपर्याय है और प्रकार, वह अर्थपर्याय है।) जिस प्रकार सुवर्ण है तो उसका कोई न काई आकार तथा पीलापन आदि प्रकार अपने आकार होता ही है; उसी प्रकार आत्मवस्तु में भी प्रकाररूपभाव वर्तते ही हैं। निमित्त आये तो पर्याय हो—ऐसी जिसकी मान्यता है, उसने आत्मा की भावशक्ति को नहीं माना है।

कोई कहे कि आत्मा और उसकी अवस्था अपने से विद्यमान है—ऐसा तो हम स्वीकार करते हैं, किन्तु हमारी पर्याय में मिथ्यात्व ही वर्तता है! तो आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! आत्मा

के भाव अपने से ही है—ऐसा तूने किसकी ओर देखकर स्वीकार किया ? यदि तूने आत्मा की ओर देखकर स्वीकार किया हो तो पर्याय में मिथ्यात्व रह ही नहीं सकता; और यदि पर की ओर देखकर ही तू कहता हो कि—'आत्मा के भाव अपने से हैं' तो इसप्रकार पर की ओर देखकर आत्मा के स्वभाव का सच्चा स्वीकार हो ही नहीं सकता। यदि आत्मा के स्वभाव को स्वीकार करे तो उस स्वभाव का अनुसरण करके निर्मल अवस्था का विद्यमानपना होना चाहिये। यदि पर्याय अकेले पर का ही अनुसरण करे तो उसने स्वभाव को किसप्रकार स्वीकार किया ? इसलिये यदि निर्मल अवस्था का विद्यमानपना न हो तो उसने विद्यमान अवस्थावाले आत्मस्वभाव को प्रतीति में लिया ही नहीं है। **जिसप्रकार द्रव्योन्मुख हुए बिना सचमुच क्रमबद्धपर्याय की या सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं हो सकती, उसीप्रकार द्रव्योन्मुख हुए बिना उसकी किसी भी शक्ति की यथार्थ प्रतीति नहीं हो सकती।—अखण्ड स्वभाव की सन्मुखता से ही धर्म का प्रारम्भ होता है; वृद्धि होती है और स्थिरपना होता है।**

भावशक्ति आदि शक्तियाँ तो समस्त आत्माओं में त्रिकाल हैं, किन्तु उनके निर्मल परिणमन बिना वे किस काम की ? अखण्ड शक्ति की ओर उन्मुख होकर जिसने उसे निर्मलरूप परिणमित न किया, उसे तो वह अभाव समान ही है, क्योंकि उसके वेदन में वह नहीं आती। जिसप्रकार मेरुपर्वत के नीचे शाश्वत सुवर्ण है, किन्तु वह किस काम का ? (वह निकलकर कभी उपयोग में नहीं आता।) उसीप्रकार सर्व आत्माओं में सर्वज्ञत्वादि शक्तियाँ होने पर भी जबतक वे निर्मल परिणमन में न आये, तब तक तो वे अज्ञानी को मेरु के नीचे भरे हुए सुवर्ण के समान हैं। स्वयं अपनी शक्ति के सन्मुख होकर उसकी प्रतीति नहीं करता, इसलिये उसे तो वह अभाव समान ही है। अपनी स्वभावशक्ति का स्वीकार करने से पर्याय में उसका निर्मल परिणमन होता है, उसकी यह बात है। मात्र विकार की रुचिवाला आत्मा की स्वभावशक्ति की प्रतीति नहीं कर सकता; और जो स्वभावशक्ति की प्रतीति करता है, उसे पर्याय में मात्र विकार ही नहीं रहता, उसे निर्मलता वर्तती है और उसमें विकार का अभाव होता जाता है। स्वभावोन्मुख होने पर निर्मल पर्याय हुई, उसमें से विकार को दूर नहीं करना पड़ता, किन्तु उस पर्याय में विकार का अभाव ही वर्तता है। देखो, यह विकार का अभाव करने की रीति! कौन-सी-रीति ?—कि जो पर्याय शुद्धस्वभाव के साथ एकता करके निर्मलरूप परिणमित हुई है, वह पर्याय स्वयं ही विकार के अभावरूप है। निर्मल पर्याय का 'भाव' और उसमें विकार का 'अभाव' ऐसी आत्मा की भावशक्ति तथा अभावशक्ति है।

ज्ञानस्वभावी आत्मा के परिणमन में ऐसी शक्तियाँ परिणमित हो ही रही हैं,—ऐसा बतलाकर यहाँ शुद्ध आत्मा का लक्ष कराना है।

जिसे विकार की रुचि है, उसकी रुचि में 'स्वभाव का अभाव' है; इसलिये उसे अभावशक्ति का विपरीत परिणमन है। और जिसे स्वभाव की रुचि है, उसकी रुचि में 'विकार का अभाव' है, इसलिये उसे अभावशक्ति का निर्मल परिणमन है।

और जिसे विकार की रुचि है, उसकी पर्याय में निर्मलता के बदले मात्र विकार का विद्यमानपना है, इसलिये उसे भावशक्ति का विपरीत परिणमन है।

और जिसे स्वभाव की रुचि है, उसकी पर्याय में निर्मलता का विद्यमानपना है, इसलिये उसे भावशक्ति का निर्मल परिणमन वर्तता है।

देखो, इसमें द्रव्य के साथ पर्याय की सन्धि की अलौकिक बात है। जिसप्रकार करोड़ रुपये की पूँजीवाले को मोहवश तत्सम्बन्धी उष्मा रहती है; उसीप्रकार यहाँ अनन्त शक्तिवान शुद्ध आत्मा को स्वीकार करे और पर्याय में उसकी उष्मा न आये—ऐसा हो ही नहीं सकता। जिस पर्याय ने अंतरोन्मुख होकर चिदानन्द से भरपूर भगवान को स्वीकार किया, उस पर्याय में निर्मलता प्रगट होकर ऐसी अपूर्व उष्मा आ गई है कि बस! मैं तो ऐसे शुद्धस्वरूप ही हूँ, विकारस्वरूप मैं नहीं हूँ—ऐसी उष्मा के बल से उसे निर्मलता बढ़ती जाती है और विकार दूर होता जाता है। इसका नाम धर्म और आराधकदशा है। जिसे ऐसी उष्मा (नि:शंकता) नहीं है, उसे धर्म का अंश भी नहीं है।

'मेरी वर्तमान पर्याय की विद्यमानता मेरे स्वभाव से ही है;—बस, ऐसा निर्णय किया, उसने पराश्रयबुद्धि को उड़ा दिया, तथा पूर्व-पश्चात् की पर्याय का वादा भी उड़ा दिया और हाजिर ऐसे अपने शुद्धस्वभाव के साथ पर्याय की सन्धि की—वह धर्म का सच्चा व्यापारी है। ऐसे आत्मा का निर्णय न करे और 'हमारे भगवान ने तथा हमारे गुरु ने कहा, वह सच्चा है, किन्तु हमें आत्मा की पहिचान नहीं होती'—ऐसा कहे तो उसने सचमुच भगवान का या गुरु का भी निर्णय नहीं किया, क्योंकि भगवान ने और गुरु ने क्या कहा, उसे समझे बिना उनकी पहिचान कहाँ से की? इसलिये स्वाश्रय से वस्तुस्वरूप का निर्णय किये बिना धर्म के पंथ में एक डग भी नहीं चल सकता।

निर्मल पर्याय के बिना द्रव्य का स्वीकार नहीं होता—इसमें तो महान रहस्य है। त्रैकालिक स्वभाव को स्वीकार करनेवाली पर्याय उसके साथ तद्रूप हो जाती है; इसलिये वह पर्याय निर्मल है। स्वभावोन्मुख निर्मल अवस्था के बिना यथार्थरूप से स्वभाव का स्वीकार नहीं होता। आत्मा का

स्वभाव ही ऐसा है कि उसका स्वीकार करने से वह स्वयं निर्मल दशारूप परिणमित हो जाता है। यदि स्वभाव परिणमित होकर अवस्था में कुछ न आये तो उस अवस्था ने स्वभाव का स्वीकार किया ही नहीं। अकेले द्रव्य की शुद्धता कहे और पर्याय की शुद्धता किंचित् भासित न हो तो वह पर्याय, शुद्धद्रव्य की ओर ढली ही नहीं है; इसलिये शुद्धद्रव्य का भी सचमुच स्वीकार नहीं किया है। आत्मा के शुद्धस्वभाव का स्वीकार करने से वह स्वभाव उल्लसित होकर पर्याय में आता है,—अर्थात् पर्याय भी स्वभाव में अभेद होकर शुद्धरूप परिणमित होती है।

वस्तु में कोई न कोई एक अवस्था तो विद्यमान होती ही है—ऐसा तो सामान्यतः अनेक लोग कहते हैं, किन्तु यहाँ तो उसके अतिरिक्त विशेष बात यह है कि—'मेरी अवस्था मुझसे ही विद्यमान है'—ऐसा स्वभाव जिसने स्वीकार किया, उसे निर्मल अवस्था का ही विद्यमानपना है। स्वभाव की प्रतीति के बिना अज्ञानी को अनादि से विकार ही विद्यमान है, स्वभाव का विद्यमानपना उसे भासित नहीं होता। जहाँ निर्मलस्वभाव की विद्यमानता भासित हुई, वहाँ उस स्वभाव के आश्रय से हुई विद्यमान पर्याय भी निर्मल हो जाती हैं। यदि ऐसा न हो तो स्वभाव का ही अभाव हो जाये, ऐसे अपने स्वभाव को समझने का अभ्यास करना भी धर्म का प्रयत्न है।

यदि अन्तर में प्रेम करे, तब तो चैतन्य प्रभु निकट ही विराजमान है। अन्तर की प्रीति के अभाव से चैतन्य प्रभु दूर भासित होता है, किन्तु यदि गुरुगम से चैतन्य का स्वरूप लक्ष में लेकर उसमें प्रीति लगाये तो प्रभु निकट ही है; स्वयं ही चिदानन्द प्रभु है, जैसी प्रीति पर में है, वैसी ही प्रीति यदि आत्मा में करे तो आत्मा का अनुभव हुए बिना न रहे।

अशुद्धता की दृष्टि में आत्मा की विद्यमानता दिखाई नहीं देती; यदि स्वभाव को देखे तो पर्याय में अन्तर पड़े बिना न रहे। जिसप्रकार पैसे की प्रीतिवाला पच्चीस लाख रुपये कमा ले और उसकी रुचि में अन्तर न पड़े—ऐसा नहीं हो सकता। उसीप्रकार चैतन्य के लक्ष से अन्तर स्वभाव का लाभ होने पर, पर्याय की रुचि में अन्तर न पड़े—ऐसा नहीं होता; अर्थात् पर्याय में स्वभाव की निःशंकता तथा उस ओर का उल्लास आये बिना नहीं रहता। यदि निर्मल अवस्था न हो तो वहाँ वस्तु ही विद्यमान नहीं है; अर्थात् अज्ञानी को वस्तु स्वभाव का निर्णय या निःशंकता नहीं है। चैतन्य -स्वभाव में उतरकर जहाँ उसका निर्णय किया, वहाँ उस समय की विद्यमान पर्याय निर्मल हुई है। निर्मल पर्याय की विद्यमानता के बिना स्वभाव का निर्णय किसने किया? कहीं मलिनता में ऐसी शक्ति नहीं है कि स्वभाव का निर्णय कर सके। देह सो मैं, राग का वेदन सो मैं,—ऐसा स्वीकार

करनेवाली पर्याय में स्वभाव का स्वीकार नहीं है, इसलिये वह पर्याय स्वयं स्वभावोन्मुख नहीं है। जहाँ स्वभावोन्मुख होनेवाली निर्मल पर्याय विद्यमान न हो, वहाँ शुद्धस्वभाव के अस्तित्व का निर्णय भी नहीं होता। इसप्रकार शुद्धस्वभाव के अस्तित्व का निर्णय और शुद्धपर्यायरूप परिणमन—यह दोनों एक साथ ही हैं। और इसप्रकार ज्ञानस्वभावी आत्मा विद्यमान अवस्थावाला है।

'विद्यमान अवस्थावाला है।'—कौन?—कहते हैं ज्ञानस्वभावी आत्मा। इसप्रकार विद्यमान अवस्थामयपने का निर्णय करनेवाले की दृष्टि ज्ञानस्वभावी आत्मा पर जाती है और उस स्वभाव की दृष्टि से उसकी विद्यमान अवस्था निर्मल ही वर्तती है। आत्मा के अस्तित्व का निर्णय करे और उसमें निर्मलपर्याय न आये—ऐसा नहीं होता। शुद्ध द्रव्य और शुद्ध पर्याय—दोनों मिलकर अभेदरूप से आत्मा का अस्तित्व है।

आत्मा की पर्याय का विद्यमानपना निमित्त के कारण तो नहीं है; पूर्व अवस्था के कारण भी वर्तमान पर्याय का विद्यमानपना नहीं है; तथा एक समय में जो विकार है, उसके कारण भी निर्मलता का विद्यमानपना नहीं है; किन्तु चैतन्यद्रव्य में एक भावशक्ति है, इसलिये उसी के आधार से निर्मल पर्याय की विद्यमानता है। आत्मा की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप पर्याय की विद्यमानता किसी पर के आधार से है—ऐसा नहीं है, किन्तु आत्मा की अपनी भावशक्ति से उस अवस्था का विद्यमानपना है। आत्मा का जो त्रिकाल स्थायी भाव, वह ध्रुव उपादान है और अवस्था की विद्यमानता वह क्षणिक उपादान है।

छट्ठे-सातवें गुणस्थान में मुनिदशा विद्यमान वर्तती है। वह मुनिदशा क्या शरीर की दिगम्बरदशा के आश्रित है?—कहते हैं—नहीं; पंचमहाव्रत के विकल्प के आश्रित हैं?—कहते हैं—नहीं; पूर्व पर्याय के आश्रित हैं?—कहते हैं नहीं; एक गुण के भेद के आश्रित हैं?—कहते हैं नहीं; वह मुनिदशा तो अनन्त शक्तिस्वरूप अभेद आत्मा के आश्रित ही विद्यमान वर्तती है।—इसप्रकार अभेद आत्मा के सन्मुख देखकर ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि निर्मल पर्याय की विद्यामानता का निर्णय होता है, और तभी ज्ञानी की, मुनि की या सर्वज्ञ की सच्ची पहिचान होती है।

आत्मा स्वयं निर्मलपर्यायरूप विद्यमान वर्ते—ऐसी उसकी भावशक्ति है; किन्तु उस भावशक्ति का कार्य ऐसा नहीं है कि विकार को अपने में प्रवर्तमान करे। विकार तो विपरीत परिणमन है, उसे शक्ति का कार्य नहीं कहा जा सकता। कारण जैसा कार्य होता है; अर्थात् निर्मल कार्य हो, उसी को शक्ति का कार्य कहा जाता है। आत्मा की एक भी शक्ति ऐसी नहीं है, जो विकार

का कारण हो, इसलिये विकार सचमुच आत्मा की शक्ति का परिणमन नहीं है। इसलिये जिसकी दृष्टि मात्र विकार पर है, उसके परिणमन में आत्मा का स्वभाव आया ही नहीं है। यदि आत्मा के स्वभाव को दृष्टि में ले तो आत्मा स्वयं निर्मलपर्यायरूप परिणमित हो जाये—ऐसा ही उसका स्वभाव है। निर्मलतारूप परिणमित हो जाये और विकार का अपने में अभाव रखे—ऐसी आत्मा की अचिन्त्यशक्ति है। अहो! जीव को कभी अपने मूलस्वभाव की महिमा नहीं आई।

सम्यग्दर्शन, वह श्रद्धागुण की पर्याय है। उस पर्याय को यदि पर के या विकल्प के कारण माने तो उस समय श्रद्धागुण की पर्याय विद्यमान न रही।—इसलिये वहाँ सचमुच सम्यग्दर्शन ही नहीं रहा; मिथ्यात्व हो गया; और मिथ्यात्व को वास्तव में श्रद्धागुण की पर्याय नहीं मानते।

स्वद्रव्य का आश्रय करके और परद्रव्य का आश्रय छोड़कर निर्मल पर्याय के भावरूप और विकार के अभावरूप परिणमित हो—ऐसा आत्मा का अनेकान्त स्वभाव है और वही धर्म है।

स्व का आश्रय छोड़कर पर के आश्रय से ही जो मात्र विभावरूप परिणमित होता है और विभाग के अभावरूप परिणमित नहीं होता, उसे स्व-पर की एकताबुद्धिरूप एकांत है—मिथ्यात्व है।

अज्ञानी कहता है कि आत्मा में कर्मों का जोर है; किन्तु यहाँ तो आचार्यदेव कहते हैं कि आत्मा में अभावशक्ति का इतना जोर है कि कर्म को अपने में आने ही नहीं देता। भावशक्ति के कारण वर्तमान निर्मल पर्याय वर्तती है और उसी समय अभावशक्ति के कारण उस पर्याय में कर्मों का—विकार का तथा पूर्व-पश्चात की पर्यायों का अभाव वर्तता है। यदि भावशक्ति न हो तो निर्मल पर्यायरूप भवन-परिणमन नहीं हो सकता; और यदि अभावशक्ति न हो तो पूर्व की विकारी पर्याय के अभावरूप परिणमन नहीं हो सकता; इसलिये वे दोनों शक्तियाँ आत्मा में एकसाथ परिणमित होती हैं। ऐसे आत्मा की पहिचान करके उसका अवलम्बन करने पर अनुक्रम से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल परिणमन होता है और विभावपरिणाम का अभाव होता है।—इसी में मोक्ष का पुरुषार्थ है।

चैतन्यस्वभावोन्मुख होते ही मिथ्यात्व के अभावरूप और सम्यक्त्व के सद्भावरूप परिणमन होता है। जो पर्याय अन्तरमुख होकर स्वभाव-सन्मुख हुई, उस पर्याय में स्वभाव का परिणमन हुए बिना नहीं रहता। स्वभाव पर दृष्टि जाने से स्वभाव की निर्मलता के भावरूप और विकार के अभावरूप जो पर्याय हुई, उस पर्याय की विद्यमानता में सम्यक्त्वी का आत्मा वर्तता है, किन्तु रागादि में वह नहीं वर्तता; उसके तो अभाव में वर्तता है।

देखो, यह सम्यक्त्वी की पहिचान! सम्यक्त्वी का आत्मा कहाँ रहा है? स्वर्ग या नरकादि के संयोग में सम्यक्त्वी का आत्मा नहीं है; राग में भी सम्यक्त्वी का आत्मा नहीं है; आत्मा के आश्रय से जो निर्मल पर्याय विद्यमान वर्तती है, उसी में सचमुच सम्यक्त्वी का आत्मा है। इसके अतिरिक्त राग से या संयोग से पहिचानने जाये तो उसप्रकार सम्यक्त्वी के आत्मा की यथार्थ पहिचान नहीं होती।

अहो! आत्मा का स्वभाव तो विकार के अभावरूप है; उस स्वभाव के आश्रय से तो विकार का अभाव होता जाता है; उसके बदले विकार को रखना चाहे तो उसे आत्मा के स्वभाव की प्रतीति नहीं है।

हे जीव! तेरा स्वभाव, विभाव के अभाववाला है।
तेरा ज्ञान, अज्ञान के अभाववाला है।
तेरी श्रद्धा, विपरीतता के अभाववाली है।
तेरा आनन्द, आकुलता के अभाववाला है।
तेरा चारित्र, कषाय के अभाववाला है।
तेरी सर्वज्ञता, आवरण के अभाववाली है।
तेरी स्वच्छता, मलिनता के अभाववाली है।
तेरा जीवन, भावमरण के अभाववाला है।
तेरा सुख, दुःख के अभाववाला है।
तेरी प्रभुता, दीनता (पामरता) के अभाववाली है।

—इसप्रकार तेरी समस्त शक्तियाँ विभाव के अभाववाली हैं। ऐसे स्वभाव का स्वीकार होने से पर्याय में भी वैसा परिणमन हो जाता है; यही धर्म की रीति है। स्वभाव की शुद्धता को प्रतीति में लेकर उसके आश्रित परिणमन करने के अतिरिक्त जगत में अन्य कोई धर्म का उपाय है ही नहीं।

पहले विकल्प होता है, उस विकल्प के कारण कहीं मिथ्यात्व के अभावरूप और सम्यक्त्व के भावरूप परिणमन नहीं होता; किन्तु शुद्ध आत्मा के आश्रय से ही मिथ्यात्व के अभावरूप और सम्यक्त्व के भावरूप परिणमन होता है। निर्मल पर्याय की एकता अपने चैतन्य प्रभु के साथ है। अन्तर्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द की जो परिणति अपने चैतन्यस्वामी के साथ एकता करे, वह चैतन्य परिणति है और जो परिणति अपने चैतन्य-पति के साथ एकता न करके पर

में और विकार में लाभ मानकर उनके साथ एकता करे, वह परिणति दुराचारिणी है, उसे चैतन्य प्रभु की परिणति नहीं कहते। वर्तमान पर्याय अन्तर्मुख होकर त्रिकाली द्रव्य के साथ एकता करे, उसका नाम अनेकान्त है। और पर के साथ एकता करे वहाँ द्रव्य शुद्ध और पर्याय अशुद्ध, इसलिये द्रव्य-पर्याय की एकतारूप अनेकान्त नहीं हुआ किन्तु एकान्त हुआ। यहाँ आचार्यदेव अनन्त शक्तिवाले आत्मस्वभाव के साथ एकता कराके अनेकान्त कराते हैं। साधक को पर्याय में अल्पराग होने पर भी शुद्ध स्वभाव के साथ एकता की दृष्टि में राग का अभाव है। प्रथम ऐसे निर्मल स्वभाव का लक्ष करे तो उस लक्ष के अनुकरण से निर्मल परिणमन हो।

अहो! आत्मा कैसा है?—कि अपनी शुद्धपर्याय की विद्यमानतासहित है। शुद्धपर्याय के बिना द्रव्य की सिद्धि नहीं होती। यह चैतन्य द्रव्य इच्छारहित होता है, रागरहित होता है, संगरहित होता है, कर्म और शरीररहित होता है, किन्तु निर्मलदशा की विद्यमानता रहित नहीं होता।

प्रश्न—अज्ञानी को आत्मा तो है, किन्तु निर्मल अवस्था नहीं है।

उत्तर—यहाँ अपने आत्मा का निर्णय करने की बात मुख्य है। अज्ञानी को अपने आत्मा के अस्तित्व का निर्णय है ही नहीं, इसलिये उसकी प्रतीति में तो द्रव्य का अस्तित्व नहीं है, उसे तो राग का ही अस्तित्व है। मेरा शुद्धद्रव्य है, किन्तु निर्मल पर्याय नहीं है—ऐसा कहनेवाले को सचमुच शुद्ध द्रव्य का भी निर्णय नहीं हुआ है। शुद्ध द्रव्य का निर्णय हुआ हो, वहाँ शुद्धपर्याय होती ही है।

ऐसी आत्मा की भावशक्ति है। यह भावशक्ति आत्मा का रागादि से और पर से भिन्नत्व तथा वर्तमान निर्मल पर्याय के साथ एकत्व बतलाती है। और वर्तमान द्रव्य के साथ अभेद हुई निर्मल पर्याय के अतिरिक्त अन्य पर्यायें तथा रागादि अविद्यमान है—ऐसा अभावशक्ति बतलाती है। ज्ञानस्वभाव को लक्ष में लेकर परिणमन करने में ऐसी भावशक्ति और अभावशक्ति भी निर्मलतारूप परिणमित होती है।—इसप्रकार ज्ञानस्वभावी आत्मा में एक साथ अनेक शक्तियों का परिणमन होने से वह स्वयमेव अनेकान्तस्वरूप है। ऐसे अनेकान्तमूर्ति भगवान आत्मा को पहिचानना, सो अपूर्व धर्म है।

आत्मा के शुद्ध स्वभाव में विकार का अभाव है, और उस स्वभाव में एकाग्र हुई निर्मल पर्याय में भी विकार का अभाव है,—ऐसी अभावशक्ति है; इसलिये 'विकार का अभाव करूँ'—ऐसा नहीं रहता, क्योंकि निर्मलरूप वर्तती हुई पर्याय स्वयं विकार के अभावस्वरूप है। जैसे कि सम्यक्त्वपर्याय हुई, वह स्वयं मिथ्यात्व के अभावस्वरूप ही है; इसलिये 'मिथ्यात्व का

अभाव करूँ'—ऐसा उस पर्याय में नहीं रहता। मिथ्यात्व का अभाव करूँ—ऐसे लक्ष में अटके तब तक मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता, किन्तु शुद्ध चैतन्यस्वरूप की दृष्टि से जहाँ सम्यक्त्व परिणमित हुआ, वहाँ मिथ्यात्व का ही अभाव वर्तता है। इसप्रकार निर्मलता के भाव में विकार का अभाव ही है;—ऐसा आत्मा का स्वभाव है। इसप्रकार न्यायपूर्वक आत्मा के शुद्ध स्वभाव का निर्णय करके अन्तर अनुभव से उसकी प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन है और उस सम्यग्दर्शन के अभिप्राय में शुद्ध आत्मा के अतिरिक्त परभाव का त्याग ही वर्तता है।

जिसप्रकार मोची का थैला खोलने से उसमें से तो चमड़े के दुर्गन्धित टुकड़े निकलते हैं; किन्तु चक्रवर्ती का करंड खोलने से उसमें से तो रत्न-मणि के हार निकलते हैं। उसीप्रकार यह शरीर तो दुर्गन्धित चमड़े जैसा है, उसकी क्रिया में से कहीं सम्यग्दर्शनादि रत्न नहीं निकलते; शरीर के लक्ष से तो राग-द्वेष के मलिनभाव होते हैं और चैतन्य चक्रवर्ती भगवान आत्मा की शक्ति का करंड खोलने से उसमें से निर्मल पर्याय की परम्परारूप मालाएँ निकलती हैं; चक्रवर्ती का भी चक्रवर्ती ऐसे इस चैतन्य भगवान के भंडार में सम्यग्दर्शन—मुनिदशा—केवलज्ञान—सिद्धदशा आदि निर्मल रत्नों की मालाएँ पड़ी हैं। भंडार खोलकर उन्हें बाहर निकालने की यह रीति आचार्य भगवान ने बतलाई है। अरे जीव! अन्तर्मुख होकर एक बार अपनी चैतन्यशक्ति के भण्डार को खोल! तेरी चैतन्यशक्ति ऐसी है कि उसे खोलने पर उसमें से निर्मल पर्याय निकलेंगी—विकार नहीं निकलेगा, विकार से तो वह शून्य है।

एक समय की मलिन अवस्था में विकार है, वह त्रिकाली स्वभाव में नहीं है। त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से निर्मल अवस्थारूप वर्तते हुए भगवान आत्मा में मिथ्यात्वादि का शून्यपना है।

इसप्रकार त्रिकाल में और त्रिकाल के आश्रय से वर्तती हुई वर्तमान अवस्था में—इन दोनों में विकार का अभाव है। साधक जीव को अल्प रागादि हैं, किन्तु उनके साथ एकतारूप परिणमन नहीं है; इसलिये स्वभाव में एकतारूप परिणमन में उनका भी अभाव है। अभावशक्ति का भान होने पर विकार के अभावरूप परिणमन होता है अज्ञानी जीव में भी यह सब शक्तियाँ होने पर भी उनका अस्वीकार करके और विकार का ही स्वीकार करके वह भटकता है। आत्मा के समस्त गुणों में निर्मल अवस्थारूप वर्तने की 'भावशक्ति' है, किन्तु जो उसका आश्रय करे, उसे वैसा परिणमन होता है।

शुद्ध स्वभाव की सन्मुखता होने पर, विभाव से विमुखता हो जाती है। दो आदमी हों, वहाँ एक के साथ बातचीत करने से दूसरे के साथ का सम्बन्ध छूट जाता है; उसीप्रकार चिदानन्द

स्वभाव की ओर उन्मुख होकर उसमें स्थिर होने से विकार का सम्बन्ध सहज ही छूट जाता है। शुद्ध स्वभाव की ओर जितना जोर दे, उतना विकार का अभाव हो जाता है।—इसमें परमार्थ व्रत-तप-त्याग आदि समस्त धर्मों का समावेश हो जाता है। त्रिकाल स्वभाव की शुद्धता पर जोर न देकर जो उससे विरुद्ध ऐसे विकार पर या निमित्त पर जोर देता है, उसकी पर्याय में स्वभाव का परिणमन नहीं होता किंतु विकार का ही परिणमन होता है, और वह अधर्म है। चिदानन्दस्वभाव की ओर उन्मुख होकर उसकी सम्यक् श्रद्धा की, उस श्रद्धा में मिथ्यात्व का त्याग है, उसके सम्यग्ज्ञान में अज्ञान का त्याग है और उसकी लीनता में अव्रत का त्याग है। इसके अतिरिक्त धर्म होने का तथा अधर्म के त्याग का अन्य कोई उपाय नहीं है; अन्य कथन हों, वे सब निमित्त के-व्यवहार के कथन हैं। आत्मस्वभाव में एकता होने पर कैसे-कैसे निमित्त का सम्बन्ध छूटा, उसका ज्ञान कराने के लिये व्यवहार कथन है कि आत्मा ने यह छोड़ा।

प्रथम यथार्थ भेदज्ञान करके अभिप्राय बदल जाना चाहिये कि चैतन्यस्वभाव ही मैं हूँ; देहादि या रागादि वे सब मुझसे पर हैं। जिसप्रकार कुँवारी कन्या, पिता के घर को तथा सम्पत्ति को 'यह मेरा घर और यह मेरी सम्पत्ति'—ऐसा मानती है; किन्तु जहाँ उसकी सगाई हुई कि तुरन्त उसका अभिप्राय बदल जाता है कि पिता का घर अथवा पिता की सम्पत्ति मेरी नहीं है, किन्तु पति का घर और पति की सम्पत्ति मेरी है। अभी तो पिता के घर में रहती है, फिर भी उसका अभिप्राय पलट जाता है। उसीप्रकार अज्ञानी ने अनादि संसार से 'देह और राग सो मैं'—ऐसा माना है; किन्तु जहाँ चैतन्यस्वभाव की दृष्टि करके सिद्धदशा के साथ सम्बन्ध जोड़ा, वहाँ उसकी दृष्टि पलट गई कि सिद्धभगवान जैसी सम्पत्तिवाला स्वभाव सो मैं हूँ, राग और देहादि मैं नहीं हूँ। अभी तो अल्प रागादि तथा देहादि का सम्बन्ध होने पर भी, उसका अभिप्राय पलट गया है और अभिप्राय पलटने से उस अभिप्राय के अनुसार परिणमन भी पलट गया है, अर्थात् सिद्धदशा की ओर का परिणमन होने लगा है और संसार की ओर का परिणमन छूटने लगा है। भले ही चाहे जितने व्रत तप-त्याग करे, हजारों रानियों को छोड़कर वैराग्यपूर्वक द्रव्यलिंगी मुनि हो, किन्तु इसप्रकार शुद्धस्वभाव के साथ का सम्बन्ध जोड़कर विकार के साथ का सम्बन्ध न तोड़े, तब तक किंचित् भी धर्म नहीं होता; वह अनादि संसाररूपी पीहर में ही रहता है!

धर्मी जानता है कि मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में कर्म का तो अभाव है; और कर्म के निमित्त से होनेवाले विकार का भी अभाव है। द्रव्य-गुण में तो त्रिकाल विकार नहीं है और पर्याय

भी उस ओर उन्मुख है, इसलिये उसमें भी विकार नहीं है। इसप्रकार आत्मस्वभाव में विकार का अभाव है—ऐसी प्रतीति द्वारा साधक को क्रमशः विकार का पूर्ण अभाव होकर सिद्धपद प्रगट होता है। विकार के अभावरूप स्वभाव की प्रतीति करे, उसे पर्याय में विकार का अभाव हुए बिना नहीं रहता। पर्यायबुद्धि से ही आत्मा विकारी भासित होता है; स्वभावबुद्धि से देखने पर आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों विकार से शून्य है; संसार उनमें है ही नहीं। संसार किसका ?—कि जो उसे अपना मानें उसका; अर्थात् विकार में जिसकी बुद्धि है, उसी को संसार है। स्वभाव की बुद्धिवाला साधक तो कहता है कि मुझमें संसार है ही नहीं—ऐसे शुद्धात्मा की दृष्टि करना ही संसार से छूटकर सिद्ध होने का उपाय है।

आत्मा का ऐसा अभाव स्वभाव है कि वह पर से और विकार से शून्य है। ज्ञान-आनन्दादि निज भावों से भरा हुआ और रागादि परभावों से रहित है। अभावशक्ति के कारण आत्मस्वभाव में पर का और विकार का अभाव है; किन्तु अभावशक्ति स्वयं कहीं आत्मा में अभावरूप नहीं है; अभावशक्ति स्वयं तो आत्मा के स्वभावरूप है। पर के अभावरूप भाव भी आत्मा का स्वभाव है।

आत्मा में पर का तो अभाव है, उसका तो कभी भाव नहीं होता। आत्मा के स्वभाव में विकार का अभाव है, उसका भी कभी भाव नहीं होता; किन्तु आत्मा की भविष्य की केवलज्ञानादि पर्यायें, जो इस समय अभावरूप हैं, उनका भाव होता है। साधक को ऐसे अपने आत्मस्वभाव की प्रतीति है, केवलज्ञान की भी प्रतीति है, विकार के अभाव की भी प्रतीति है। उसे वर्तमान निर्मलता वर्तती है और अल्पकाल में विकार का सर्वथा अभाव होकर जगमगाता हुआ केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

जय हो उस केवलज्ञान की !

—यहाँ तेतीसवीं भावशक्ति, तथा चौंतीसवीं अभावशक्ति का वर्णन पूरा हुआ।

आत्मा का धर्म

श्री पद्मनन्दि पच्चीसी : एकत्व अधिकार

[पालेज में पूज्य गुरुदेव का प्रवचन]

आत्मा, देह से भिन्न क्या तत्त्व है—उसके भान बिना जीव को धर्म नहीं होता; और धर्म के बिना जीव अनंतानंत काल से चारगति में भ्रमण कर रहा है। संत, करुणाबुद्धि से उसे धर्म का स्वरूप समझाते हैं; किन्तु जीवन भर व्यापार-धंधे में तथा दौड़-धूप में जीव को धर्म का श्रवण करने की दरकार नहीं होती। धर्म समझे बिना जीव ने स्वर्ग, नरक, तिर्यंच तथा मनुष्य—चार गति के अवतार अनंत बार किये हैं, उनमें धर्म का श्रवण भी जीव के लिये अत्यन्त दुर्लभ है।

संत और महा पुरुष जिससे आत्मा का हित हो—ऐसा धर्म करुणाबुद्धि से समझाते हैं, किन्तु मोह के कारण जीव उसे मानता नहीं है और न सुनता है। भाई! तू विचार तो कर कि यह देह छूट जाने पर तेरा क्या होगा! यहाँ जीवन भर पच्चीस-पचास वर्ष तक सर्व प्रकार की अनुकूलता रहे और कोई प्रतिकूलता न आये, उसका कितना विचार करता है? तो हे जीव! यह शरीर छूट जाने पर दूसरे ही क्षण दूसरा नया शरीर प्राप्त होगा। उसे सम्पूर्ण अवतार में सुख हो और दुःख न हो, उसके लिये तूने कोई उपाय किया? यदि इस भव के बाद दूसरे भव का विचार करे तो कुछ हित का उपाय करे। भाई! क्या तेरा आत्मा इस शरीर जितना ही है? या शरीर के बाद भी वह रहनेवाला है? आत्मा तो नित्य रहनेवाला है। यह शरीर छूटते ही तुरन्त दूसरा अवतार प्रारम्भ हो जायेगा; तो दूसरे अवतार में आत्मा का क्या होगा? उसका तो विचार कर!

जब तक आत्मा की मुक्ति और परमात्मदशा न हो, तबतक उसे अवतार होते ही रहते हैं। भूतकाल में दृष्टि डालने पर कहीं जिनका अन्त दिखाई नहीं देता—ऐसे अनन्तानन्त अवतार जीव अज्ञानभाव से कर चुका है।

आत्मज्ञान के बिना तीव्र हिंसादि पाप करनेवाला, मांसभक्षी, शिकार और चोरी करनेवाले—ऐसे तीव्र पापों का सेवन करनेवाले जीव नीचे नरक में जाते हैं। जो तीव्र माया-कपट लोलुपता करते हैं, वे तिर्यंच होते हैं। दया-दानादि के परिणामों द्वारा पुण्य बंध करनेवाला जीव,

स्वर्ग में जाता है। स्वर्ग में भी जीव अनन्तबार हो आया है। मनुष्य अवतार तो अनंत काल में दुर्लभ है; उसमें संतों का उपदेश है कि अब आत्मा का भान करके संसारचक्र से बाहर निकलो। जिसप्रकार कोई नदी में खेल रहा हो और पीछे से बाढ़ आ रही हो; वहाँ कोई समझाये कि 'भाई! जल्दी से बाहर निकल जाओ, नहीं तो बाढ़ में बह जाओगे।' तथापि वह न निकले तो क्या होगा? डूब जायेगा और बहकर समुद्र में पहुँचेगा। उसी प्रकार अनन्तानन्तकाल में मनुष्य अवतार मिला; उसमें पीछे से मृत्युरूपी बाढ़ चली आ रही है... संतों का उपदेश है कि अरे जीवो! इस अल्प जीवन में आत्मा को पहिचानो। यदि सत्समागम से आत्मा का भान न किया, और यों ही व्यापार-धन्धे में जीवन बिता दिया तो आयु पूर्ण होने पर आत्मा चार गति के समुद्र में डूब जायेगा; इसलिये सत्समागम से आत्मा के धर्म का श्रवण-मनन करना चाहिए।

जिसप्रकार लैंडी पीपल में चौंसठ पुटी चरपराहट की शक्ति है, वही प्रयोग करने से प्रगट होती है। उसीप्रकार आत्मा में सर्वज्ञपद और सिद्धपद प्रगट होने की शक्ति है, वह सच्ची समझ के प्रयोग द्वारा प्रगट होती है। मेरा आनन्द मुझमें ही है—ऐसी प्रतीति करने से आनन्दरूपी मंगल की प्राप्ति होती है और ममकाररूपी पाप का नाश होता है। इसप्रकार धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है। लोक में तो विवाहादि कार्यों को, पुत्र जन्म को या दुकान का कार्य प्रारम्भ करने को मंगल कहा जाता है, किन्तु वह सच्चा मंगल नहीं है; आत्मा का ज्ञान करने से अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है और दुःख दूर होता है, वही सच्चा मांगलिक है।

हे जीवों! यह आयुरूपी शीशी फूटने पर उसे पुनः जोड़ा नहीं जा सकेगा। आयु अल्प है और मनुष्य जीवन दुर्लभ है, इसलिये तुम प्रमाद न करो। आत्मा का हित कैसे होता है? उस धर्म को समझने का प्रयत्न करो। किस भाव से स्वर्ग-नरक की प्राप्ति होती है और किस भाव से तिर्यंच या मनुष्य अवतार मिलता है-उसकी भी जिसे खबर न हो, उसे इस बात की खबर तो कहाँ से होगी कि मुक्ति किस भाव से होती है?

इस आत्मा में सर्वज्ञ परमात्मा होने की शक्ति है। यह शरीर तो जड़ पुतला है; इसमें कहीं आत्मा की शांति या सुख नहीं है। सुख-शांति और ज्ञान तो आत्मा में भरे हैं किन्तु जीव को अपने स्वभाव का विश्वास नहीं आता। मुझमें प्रभुता विद्यमान है, ऐसा विश्वास उसे नहीं आता और बाह्य में ही सुख ढूँढ़ता है। संत समझाते हैं कि भाई! तेरे चैतन्यतत्त्व में ही अतीन्द्रिय आनन्द का रस भरा है, उसे एक बार जान तो सही! हर्र आदि के गुण जानता है कि सम्मेदशिखर की हर्र बहुत

उच्चप्रकार की होती है, किन्तु इस भगवान आत्मा में उच्च सर्वज्ञता की शक्ति भरी है, उसे नहीं पहिचानता। आत्मा में से परिपूर्ण शक्ति प्रगट करके जो सर्वज्ञ परमात्मा हुए, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में धर्म का उपदेश आता है; उस धर्म का श्रवण करने के लिये स्वर्ग के देव और इन्द्र भी तरसते हैं, और अपने स्वर्ग से इस मनुष्य लोक में आकर भगवान की वाणी में धर्म का श्रवण करते हैं। तो भाई! जिस धर्म का श्रवण करने के लिये देव भी स्वर्ग छोड़कर धरती पर आते हैं—ऐसे धर्म का श्रवण करने के लिये तू निवृत्ति ले और सत्समागम कर। भाई! यह देह तो क्षणभंगुर है; एकबार उठा, वह रात को फिर नहीं सोयेगा और एकबार सोया, वह सवेरे फिर नहीं उठेगा;—ऐसा क्षणभंगुर यह अवतार है; इसमें आत्मा के हित का उपाय कर। भाई! तू अनंत बार बड़ा राजा भी हुआ, किन्तु वह कहीं अपूर्व नहीं है। आत्मा का ज्ञान करके भव का अन्त लाना ही अपूर्व है। आत्मा ज्ञान करे तो अंतर से स्वयं को ऐसी साक्षी आ जाये कि अब अल्पकाल में हमारी मुक्ति हो जायेगी, अब हमें इस संसार में अधिक भव धारण नहीं करना हैं; किन्तु उसके लिये अत्यन्त पात्रता और अत्यन्त रुचि पूर्वक सत्समागम से आत्मा के हित का विचार करना चाहिये कि:—

''हुँ कोण छूं? क्याँथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?
कोना संबंधे वलगणा छे! राखुं के अे परिहरुं?
अेना विचार विवेक पूर्वक शान्त भावे जो कर्यां,
तो सर्व आत्मिकज्ञाननां सिद्धांत तत्वो अनुभव्यां।''

(यहाँ गुरुदेव अत्यन्त वैराग्य भरी वाणी में कहते हैं कि—) अरे! धर्म समझने के लिये धर्मात्मा कौन है? वे धर्म का क्या स्वरूप बतलाते हैं? उसका विचार तो करो। अनन्तकाल का परिभ्रमण मिटाने की बात संत-ज्ञानी समझाते हैं, वह क्या है? उसे लक्ष में तो लो! विचार तो करो कि अरे रे! मेरा आत्मा अनंतानंतकाल से इन अवतारों में भटक रहा है, तो अब वह मेरा परिभ्रमण कैसे दूर होगा? मेरा यथार्थ स्वरूप क्या है कि जिसे समझने से परिभ्रमण दूर होकर मुझे शांति का अनुभव होता है!! —इसप्रकार अन्तर में विचार करके यदि आत्मस्वरूप को पहिचाने तो आत्मा को ऐसा आनन्द आये कि जिसकी गंध स्वर्ग में भी नहीं है... अनन्तकाल में जिस आनन्द का स्वाद जीव ने स्वर्ग में भी नहीं चखा, उस अपूर्व आनन्द का स्वाद उसे धर्म समझने से आता है और भव के अंत की तैयारी हो जाती है। ऐसे धर्म का स्वरूप क्या है-वह अब कहेंगे।

मोक्ष के साधन सम्बन्धी
प्रश्नोत्तर

[मोक्षाधिकार के प्रवचनों से : वीर सं० २४८३ श्रावण शुक्ला ११ से प्रारंभ]

[जिज्ञासुओं को समझने में सुगमता हो, इसलिये यह विषय प्रश्नोत्तर रूप से उपस्थित किया गया है।]

[अंक ..... से आगे]

[प्रारम्भ में आचार्य भगवान ने ऐसा समझाया कि—आत्मा और बंध को सर्वथा पृथक् करना, सो मोक्ष है; और प्रज्ञारूपी छैनी द्वारा अर्थात् भेदज्ञान द्वारा उन्हें पृथक् किया जाता है। प्रथम तो, आत्मा और बंध-दोनों के भिन्न-भिन्न लक्षण जानकर, फिर उनकी सूक्ष्म संधि के बीच में प्रज्ञा-दैनी को उग्र पुरुषार्थ द्वारा पटकना चाहिए।—इसप्रकार प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा और बंध को पृथक् करके आत्मा को ग्रहण करना अर्थात् उसमें एकाग्र होना, और बंध को छोड़ना—वह मोक्ष का उपाय है। उसका स्पष्टीकरण चल रहा है।]

६४ प्रश्न—प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा और बंध का भेदज्ञान करने से क्या होता है ?

उत्तर—प्रज्ञाछैनी द्वारा भेदज्ञान करते ही आत्मा में मोक्ष का सन्देश आ जाता है; आत्मा में सिद्धभगवान जैसे परमानन्द का नमूना आ जाता है।

६५ प्रश्न—जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, उन्होंने किसप्रकार किया है ?

उत्तर—जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, उन्होंने प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा और बंध का भेदज्ञान करके प्राप्त किया है।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।

६६ प्रश्न—आत्मा को पकड़ने के लिये किस वस्तु की आवश्यकता होती है ?

उत्तर—आत्मा को पकड़ने के लिए पहले तो उसकी रीति जानने का धैर्य होना चाहिए। पहले अंतर में धैर्यपूर्वक आत्मा के लक्षण को जाने तो आत्मा पकड़ में आए।

६७ प्रश्न—आत्मा का लक्षण क्या है ?

उत्तर—आत्मा का स्वलक्षण चैतन्य है।

६८ प्रश्न— यह चैतन्य लक्षण कैसा है ?

उत्तर—चैतन्य लक्षण अन्य द्रव्यों से असाधारण है।

६९ प्रश्न—असाधारण का अर्थ क्या ?

उत्तर—असाधारण अर्थात् दूसरे में न हो ऐसा। आत्मा का चैतन्य लक्षण आत्मा में ही है; आत्मा के अतिरिक्त अन्य में नहीं है; इसलिए वह असाधारण लक्षण है।

७० प्रश्न—उस चैतन्य लक्षण द्वारा क्या लक्षित करना ?

उत्तर—जिन-जिन गुणों में और पर्यायों में वह चैतन्य लक्षण विद्यमान है, वे समस्त गुण-पर्यायें आत्मा हैं—ऐसा लक्षित करना चाहिए।

७१ प्रश्न—आत्मा का हित करने के लिए किसे अग्र (मुख्य) करना ?

उत्तर—चैतन्य लक्षण को अग्र करने से आत्मा पकड़ में आता है और उसका हित होता है; किन्तु रागलक्षण को अग्र करने से उसके द्वारा आत्मा लक्ष में नहीं आता; इसलिए उसमें आत्मा का हित नहीं है।

७२ प्रश्न—राग, आत्मा का लक्षण क्यों नहीं है ?

उत्तर—क्योंकि राग, आत्मा के समस्त गुण-पर्यायों में व्याप्त नहीं होता; रागरहित भी आत्मा दिखाई देता है, इसलिए वह आत्मा का लक्षण नहीं है।

७३ प्रश्न—नरक में रहनेवाला जीव क्या ऐसे आत्मा का लक्ष कर सकता है ?

उत्तर—हाँ, सातवें नरक में रहनेवाले नारकी का जीव भी अन्तर में चैतन्य लक्षण द्वारा आत्मा को लक्ष में लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकता है।

७४ प्रश्न—यह बात किसे समझ में आ सकेगी ?

उत्तर—अहो ! जिसे अन्तर में आत्मा की भूख लगे—जिज्ञासा जागृत हो—गरज हो, कि अरे ! मेरे हित का पंथ क्या है !! इस भव दुःख का अब कहीं अन्त होगा !! अन्तर में मेरा आत्मा क्या वस्तु है !!—ऐसे जीव की समझ में यह बात आ सकती है।

७५ प्रश्न—कैसे आत्मा को लक्ष में लेना सम्यग्दर्शन है ?

उत्तर—चैतन्य लक्षण से लक्षित आत्मा को लक्ष में लेना, वह सम्यग्दर्शन है।

७६ प्रश्न—मोक्षमार्ग क्या है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्षमार्ग है ?

७७ प्रश्न—वह मोक्षमार्ग किस प्रकार प्रगट होता है ?

उत्तर—चैतन्य लक्षण से लक्षित आत्मा को लक्ष में लेकर उसमें एकाग्र होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

७८ प्रश्न—सुनने पर भी यह बात समझ में न आये तो उसका क्या कारण ?

उत्तर—जिसे अन्तर में आत्मा की सच्ची रुचि और दरकार हो, उसे यह बात समझ में आये बिना नहीं रहती; समझ में न आये तो उस जीव की अपनी रुचि का दोष है।

७९ प्रश्न—लक्षण का अर्थ क्या है ?

उत्तर—लक्षण अर्थात् वस्तु को पहिचानने का चिह्न।

८० प्रश्न—आत्मा किस चिह्न द्वारा पहिचाना जाता है ?

उत्तर—चैतन्य चिह्न द्वारा ही आत्मा की पहिचान होती है। इसके अतिरिक्त देह की क्रिया अथवा रागादि के द्वारा आत्मा की पहिचान नहीं होती।

८१ प्रश्न—आत्मा, राग द्वारा क्यों नहीं पहिचाना जाता ?

उत्तर—क्योंकि राग, आत्मा का नहीं किन्तु बंध का लक्षण है।

८२ प्रश्न—राग और ज्ञान में एकता है या नहीं ?

उत्तर—नहीं, राग और ज्ञान में एकता नहीं है।

८३ प्रश्न—यदि राग और ज्ञान में एकता नहीं है तो राग की उत्पत्ति ज्ञान के साथ ही क्यों दिखाई देती है ?

उत्तर—राग की उत्पत्ति ज्ञान के साथ ही दिखाई देती है, वह उनके एकत्व के कारण नहीं, किन्तु उनके ज्ञेय-ज्ञायकपने की अत्यन्त निकटता के कारण है।

८४ प्रश्न—ज्ञान में जो रागादिक ज्ञात होते हैं, वे क्या प्रगट करते हैं ?

उत्तर—ज्ञान में रागादिक ज्ञात होते हैं, वे तो ज्ञान के चेतक स्वभाव को प्रगट करते हैं, वे कहीं ज्ञान के रागादिपने को प्रगट नहीं करते।

८५ प्रश्न—इसप्रकार ज्ञान और राग की भिन्नता होने पर भी अज्ञानी को उनमें एकता होने का जो भ्रम है, उसका छेदन किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—अज्ञानी के उस भ्रम का प्रज्ञाछैनी द्वारा अवश्य छेदन किया जा सकता है।

८६ प्रश्न—मोक्षार्थी को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—मोक्षार्थी को आत्मा और बंध दोनों को भिन्न-भिन्न लक्षण द्वारा पहिचानकर प्रज्ञाछैनी द्वारा पृथक्-पृथक् करना चाहिये;—इसप्रकार उन दोनों को पृथक् करके बंध को छोड़ना और चैतन्यस्वरूप आत्मा में मग्न होना चाहिये।

८७ प्रश्न—प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा और बंध को पृथक् किया जा सकता है—ऐसा कौन जानता है ?

उत्तर—आचार्यदेव कहते हैं कि प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा और बंध को छेदकर पृथक् किया जा सकता है, ऐसा हम जानते हैं। इसप्रकार जो जीव अंतर में भेदज्ञान करते हैं, उन्हें स्वयं को उसकी खबर होती है। पुरुषार्थ द्वारा अंतर में भेदज्ञान करे और स्वयं को उसकी खबर न पड़े—ऐसा नहीं हो सकता।

८८ प्रश्न—रागादि की अपेक्षा चैतन्य की अपेक्षा किसप्रकार है ?

उत्तर—आत्मा की जितनी पर्यायों में चैतन्य की व्याप्ति का प्रतिभास होता है, उतना रागादि की व्याप्ति का नहीं होता, अर्थात् चैतन्य तो आत्मा की समस्त पर्यायों में व्याप्त है, किन्तु राग कहीं आत्मा की समस्त पर्यायों में व्याप्त नहीं होता; चैतन्य के बिना तो आत्मा कभी होता ही नहीं है, जबकि राग के बिना आत्मा होता है;—इसप्रकार राग की अपेक्षा चैतन्य की अधिकता है, इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि उन दोनों की भिन्नता ही है।

८९ प्रश्न—चैतन्यरहित आत्मा होता है ?

उत्तर—नहीं; चैतन्यरहित आत्मा कभी संभव नहीं है।

९० प्रश्न—रागरहित आत्मा होता है ?

उत्तर—हाँ, राग के बिना भी आत्मलाभ संभव है। केवलज्ञानादि दशा में वर्तता आत्मा रागरहित ही है।

९१ प्रश्न—राग द्वारा मोक्ष क्यों नहीं होता ?

उत्तर—मोक्षदशा होने पर राग तो आत्मा में से निकल जाता है; जो आत्मा में से निकल जाता है, उसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

९२ प्रश्न—रागादि मोक्ष का कारण क्यों नहीं है ?

उत्तर—क्योंकि वे रागादि आत्मा का स्वभाव नहीं हैं, इसलिये वह मोक्ष का कारण नहीं है।

९३ प्रश्न—रागादि आत्मा का स्वभाव क्यों नहीं है ?

उत्तर—क्योंकि यदि रागादि आत्मा का स्वभाव हो तो आत्मा उससे रहित कभी हो ही नहीं सकता, किन्तु केवलज्ञानादि दशा में तो आत्मा रागरहित हो जाता है,—इसलिये निश्चित होता है कि रागादि आत्मा का स्वभाव नहीं है।

९४ प्रश्न—रागादि आत्मा नहीं है तो वह कौन-सा तत्त्व है ?

उत्तर—रागादि बंधतत्त्व स्वरूप है।

९५ प्रश्न—रागादिक बंधतत्त्व है—ऐसा कब जाना कहलाता है ?

उत्तर—मैं रागादिक से भिन्न ज्ञानस्वभावी हूँ और यह रागादिक भाव मुझसे भिन्न मेरे ज्ञान के ज्ञेय हैं—ऐसा जब स्वसन्मुख होकर जाने, तब आत्मा को तथा बंधतत्त्व को जाना कहलाता है।

९६ प्रश्न—मोक्षार्थी जीव कैसा होता है ?

उत्तर—मोक्षार्थी जीव, मोक्ष के कारण का आदर करता है किन्तु बंध के कारण को आदरणीय नहीं मानता। रागादि भावों को वह बंध के कारणरूप मानता है, इसलिये उन्हें आदरणीय नहीं मानता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग को ही वह आदरणीय मानता है।

९७ प्रश्न—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप जो मोक्षमार्ग है, वह किसका अवलम्बन लेता है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप जो मोक्षमार्ग है, वह शुद्ध आत्मा का ही अवलम्बन लेता है; राग का या पर का अवलम्बन नहीं लेता। पर से और राग से तो वह रत्नत्रय मार्ग अत्यन्त उदासीन है।

९८ प्रश्न—ऐसा मोक्षमार्ग प्रगट करने के लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—ऐसा मोक्षमार्ग प्रगट करने के लिये प्रथम तो बराबर निर्णय करना चाहिये कि मेरा मोक्ष साधन मेरे आत्मा के अवलम्बन से है, इसके अतिरिक्त बाह्य में किन्हीं रागादि के अवलम्बन से मेरा मोक्षसाधन नहीं है—ऐसा निर्णय करके भेदज्ञान के बल से बारम्बार अंतर्मुख होने का अभ्यास करने से, शुद्धात्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

९९ प्रश्न—मोक्षार्थियों को कैसे सिद्धान्त का सेवन करना चाहिये ?

उत्तर—मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करें कि "मैं तो शुद्ध चैतन्यमात्र एक परम ज्योति सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, सो मैं नहीं हूँ; क्योंकि वे सब मेरे लिये परद्रव्य हैं।"

१०० प्रश्न— श्रीगुरु का ऐसा उपदेश प्राप्त करके क्या करें ?

उत्तर— श्रीगुरु का उपदेश प्राप्त करके आत्मा और बंध दोनों के पृथक्-पृथक् लक्षण जानकर उनका भिन्न-भिन्न अनुभव करना चाहिये। आत्मा को तो अपने चैतन्यस्वरूप में मग्न करना चाहिये और बंध को अपने से भिन्न जानकर छोड़ना चाहिये;—ऐसा करने से मोक्षपद की प्राप्ति होती है।

हितोपदेश

श्री मुनिराज निस्पृह करुणाबुद्धि से कहते हैं कि—अल्पकाल में जिन्हें भवरहित होना है—ऐसे निकट भव्य जीव इस शुद्ध आत्मा का आदर करो ! उसके अनुभव का अभ्यास करो। इस दुर्लभ मनुष्य भव में भी यदि अपने शुद्ध स्वभाव को जानकर उसका आदर-आश्रय नहीं किया, तो फिर ऐसा सुअवसर कब प्राप्त होगा ? [नियमसार प्रवचनों से]

पावापुरी

सिद्धालयवासी हे वीर प्रभो !

आप तो आज इस पावापुरी धाम से परममंगल ऐसे मोक्षपद को प्राप्त हुए... अनादिकाल के संसार का अंत लाकर आपने अभूतपूर्व सिद्धपद प्राप्त किया... और... अनादि-अनंत काल में मोक्षगामी जीव को मात्र एक ही समय जिसकी प्राप्ति होती है—ऐसे स्वभाव ऊर्ध्वगमन द्वारा आप सिद्धालय में—लोकाग्र में—पधारे...

आपके पवित्र चरणों से... तथा आपके मोक्षगमन से पावन हुई पावापुरी... आज भी मानों

भव्य जीवों को मोक्ष में बुला रही है... उस पावन भूमि में से आज भी मोक्ष की ध्वनि गूंज रही है कि हे जीवो ! आत्मा का अन्तिम ध्येय और परम इष्ट ऐसा सिद्धपद भगवान ने यहाँ से प्राप्त किया है... पद्म सरोवर के कमल भी मानों ऊपर भगवान की ओर निहार-निहारकर साक्षी दे रहे हैं कि भगवान पानी में कमल की भाँति विभावों से और कर्मों से अलिप्त थे.... उन अलिप्त भगवान के संग से हम भी अलिप्त हो गये...

हे भगवान ! आप सिद्धालय में अनंत सिद्ध भगवन्तों के साथ वास करते हैं, तथापि अभेद भक्ति के बल से साधक संत अपने हृदय में उतार कर परम ध्येयरूप आपको ध्याते हैं और उसी ध्यान द्वारा आपके पुनीत पद चिह्नों पर चले आते हैं।

पावापुरी.... ! आपके मोक्ष का पवित्र स्थान !! अहा ! उस मोक्षधाम का स्पर्श करते ही मुमुक्षु का हृदय आनन्द से नाच उठता है... मुमुक्षु के आत्मा में मोक्षमार्ग की स्फुरणा होती है... परम स्वाश्रयरूप आपके मोक्षमार्ग का वहाँ स्मरण होता है। मोक्ष का स्वाश्रित पंथ आपके पवित्र पद चिह्नों से आज भी सुशोभित हो रहा है और स्वाश्रय की ओर झुक-झुककर हम आपके पंथ पर... आपके पुनीत पद चिह्नों पर चले आ रहे हैं।

हे नाथ ! नमस्कार हो आपको... तथा आपके पुनीत पंथ को !

सुखी होने के लिये क्या करें!

जीव ज्ञानस्वभाव है, स्वयं ज्ञान-सुखमय पूर्ण सामर्थ्यवान नित्य है, वह वर्तमान में अजाग्रत होकर अपनी भूल से अपने को भूल रहा है; इसलिये वर्तमान में उसे अल्पज्ञता और दुःख है, उसे टालकर वह सर्वज्ञता और सुख प्रगट करना चाहता है तो सर्वज्ञता अर्थात् एक समय में परिपूर्ण जाने, सभी को सर्व प्रकार से जाने—ऐसा ज्ञान; वह सर्वज्ञता प्रगट होने की शक्ति कहाँ है ? शरीर की क्रिया में, संयोगों में या निमित्त में सर्वज्ञता प्रगट होने की शक्ति नहीं है; शुभराग में भी वह शक्ति नहीं है और वर्तमान अल्पज्ञ पर्याय है, उसमें से भी सर्वज्ञता प्रगट हो—ऐसी शक्ति नहीं है।

किन्तु आत्मा के ध्रुव ज्ञानस्वभाव में सर्वज्ञता प्रगट होने की शक्ति सदैव भरी है। उस ज्ञानस्वभाव का विश्वास करके उसका अवलम्बन लेने से सर्वज्ञता और पूर्ण आनन्द प्रगट होता है। इसलिये जिसे सुखी होना हो, उसे अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करना चाहिये।

ज्ञानस्वभावी आत्मतत्त्व का निर्णय करने से ही मिथ्यात्वरूप महान पाप दूर होकर सच्चे धर्म (-सुख) का प्रारम्भ होता है। [प्रवचन से]

दश लक्षणी धर्म अर्थात् पर्यूषण पर्व

भाद्रपद शुक्ला ५ बुधवार ता० १७-९-५८ से भाद्रपद शुक्ला १४ शुक्रवार ता० २६-९-५८ तक दस दिन सोनगढ़ में दस लक्षणी धर्म अर्थात् पर्यूषण के रूप में मनाये जायेंगे। इन दिनों के दरमियान उत्तर क्षमादि धर्मों पर पूज्य कानजी स्वामी के मुख्य प्रवचन होंगे। इसके उपरांत सामूहिक भक्ति, तत्त्वचर्चा, मंडल विधान पूजा आदि कार्यक्रम भी होता है। बाहर गाँव के अनेक जिज्ञासु इसमें सम्मिलित होते हैं। जिज्ञासुओं को सोनगढ़ आकर लाभ लेना चाहिये। उत्तर प्रान्त वाले जैन भाइयों के लिये अलग चौके की व्यवस्था भी चालू है।

जिज्ञासुओं के लिये स्वर्णावसर

आसोज सुद १५ तक के लिये कुछ ग्रन्थों के मूल्य में कमी

१- लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका—

जिसमें तत्त्वज्ञान के सुगम शैली से प्रवेश पाने के लिये शास्त्राधार सहित सुगम और प्रयोजनभूत प्रश्नोत्तर हैं। मूल्य ०-१९ नये पैसे। एकसाथ २५ बुक में १२॥) टका के हिसाब से कमीशन देंगे और १०० बुक मंगाने पर २५) टका कमीशन देंगे।

२- श्री समयसार प्रवचन भाग-३ हिन्दी ४॥) वाला अर्ध मूल्य में

३- भेदविज्ञानसार २) वाला अर्ध मूल्य में

४- श्री जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह-

जो भक्ति पूजा और तीर्थयात्रा के समय जिनेन्द्रों की बड़ी-बड़ी पूजा के लिये उपयोगी पुस्तक है। जिसमें भारतवर्ष के प्राय: सब तीर्थक्षेत्र तथा अतिशय क्षेत्रों में पूजा के समय जो प्राचीन पूजायें चल रही हैं, वे हैं, और यात्रियों के लिये तीर्थक्षेत्रों के विषय में प्रयोजनभूत आवश्यक जानकारी और कहाँ से कहाँ जाना इत्यादि वर्णन होने से अति उपयोगी है। बहुत अच्छे कागज पर सुन्दर ढंग से बड़े टाइप में छपी है, बढ़िया कपड़े की जिल्द पत्र सं० ३०० मूल्य १-४५ पोस्टेजादि अलग। १० पुस्तक एक साथ लेने पर २५) प्रतिशत कमीशन और एक ग्रंथ में दस टका कमीशन देंगे। पोस्टेजादि अलग।

५- ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव-

जो जैनधर्म का महत्वपूर्ण तात्त्विक और प्रयोजनभूत ग्रन्थ है, जो जिज्ञासुओं के लिये सर्व समाधानरूप अपूर्व वस्तुस्वभाव के ज्ञानमय तत्त्वदृष्टि प्रगट करनेवाली महान चीज़ है। इसके मुख्य विषय—

१- क्रमबद्धपर्याय के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तथा उनमें दोष कल्पना का निराकरण है।

२- सम्यक् अनेकान्तगर्भित सम्यक् नियतवाद-जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म ये पंच समवाय और क्रमबद्ध के निर्णय में स्वसन्मुख होने का सच्चा पुरुषार्थ तथा अनेकान्त।

३- अनेकान्त, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार। ४ - द्रव्य-पर्याय संबंधी अनेकान्त।

५- अनन्त पुरुषार्थ। ६. वस्तुविज्ञान अंक, जिसमें श्री प्रवचनसारजी गाथा ९९ के ऊपर पू० श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रवचनों का सार है। ७- आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त हो, इस विषय में प्रवचनसार शास्त्र में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन है, उस पर खास प्रवचनों का सार—जिसमें नियतनय, अनियतनय, कालनय, अकालनय से वर्णन है। बढ़िया जिल्द सुन्दर कागज व आकर्षक बढ़िया टाइप में उत्तम छपाई है, पत्र सं० ४०० मूल्य २-५० नये पैसे। ५० पुस्तक लेने पर १० टका के हिसाब से कमीशन देंगे।

पता—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) दूसरी आवृत्ति

छपकर तैयार हो गया है। तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से माँग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकान्त पूर्वक नयार्थ भी दिये हैं और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा-सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्व प्रेमियों को यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र सं० ९०० मूल्य लागत मात्र, ५) पोस्टेज आदि अलग। पचास ग्रन्थ मंगानेवाले को दस टका कमीशन; सौ पुस्तक में बीस टका कमीशन और १० पुस्तक से कम मंगाने पर कमीशन नहीं देंगे।

मंगानेवालों की संख्या बहुत होने से आगे से ग्राहक होनेवालों को प्रथम मिलेगा। ओर्डर शीघ्र भेज दीजियेगा। सुभीते के लिये मदनगंज से भी पुस्तक भेजी जावेगी।

पता—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

मूल में भूल	।।।)	मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५ ॥=)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन	१ ॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१ ।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)		
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	भेदविज्ञानसार	२)
प्रवचनसार	५)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
अष्टपाहुड़	३)	समयसार पद्यानुवाद	।)
चिद्विलास	१=)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
आत्मावलोकन	१)	स्तोत्रत्रयी	॥)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
द्वितीय भाग	२)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)	आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५-६-७-८-१० वर्ष	३ ।।।)
द्वितीय भाग	॥-)		
जैन बालपोथी	।)	शासन प्रभाव	=)
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)		

हिन्दी आत्मधर्म की फाइलें

वर्ष १, २, ३, ५, ६, ७, ८, १० यह आठ फाइलें एक साथ लेने वालों को ३०-०-० के बदले २०-०-० में दी जायेंगी।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।